OUKA
The University of Osaka
Institutional Knowledge Archive

Title	हिंदी यात्रा-संस्मरणों में जापानी समाज और संस्कृति की छवि
Author(s)	Singh, Ved Prakash
Citation	外国語教育のフロンティア. 2021, 4, p. 45-57
Version Type	VoR
URL	https://doi.org/10.18910/79359
rights	
Note	

The University of Osaka Institutional Knowledge Archive : OUKA

https://ir.library.osaka-u.ac.jp/

The University of Osaka

हिंदी यात्रा-संस्मरणों में जापानी समाज और संस्कृति की छवि

Image of Japanese Society and Culture in Hindi Travel Memoirs

SINGH, Ved Prakash

Abstract

In this article I have attempted to examine the impression of Hindi writers about Japanese society and culture. There are not much written materials available in this regard. Only eight or nine complete books and around ten articles have been found to know about the image of Japanese society in Hindi travel memoirs. The first and I think one of the best books about Japan (The title of the book, too, is 'Japan') in Hindi was written by Rahul Sankrityayan in 1936. He came to Japan in the summer of 1935. He stayed in Japan for around three months. He wrote 215 pages about Japanese culture and different places. Before World War 2 Japan was completely different from the Japan after 1945. Culturally Japan was full of patriotic feelings and heavily nationalist. Industrialization was more or less same. But farming sector was bigger than the industrial sector in Japan around 1930s, according to this book.

Just after this book another Indian writer Vishnu Dutt Shukl wrote 'Japan ki Baten' in 1938. After these two books written during 1930s, no other books could be found related to forth decade. This could be that because of WW2 no Indian writer had visited Japan. After WW2, four Hindi books about Japan could be found, which were written during 1950s. And then in the following decade, only one piece of travel memoirs was published during 1960s. Further I have found three travel memoirs that were written during 1970s. No travel memoirs of 1980s could be found. However, during the next thirty years, we could find a greater progress so much so that six travel memoirs were made available.

In a broader sense, the image on Indian mind about Japanese society is highly industrialized nation, the people are very hard-working, patriotic, peaceful and nature loving, Buddhist, educated and well mannered.

Most of the writers have mentioned in their respective works that the Japanese people are very much helping nature. This is true that language is a big problem for foreigners in Japan. But this problem is nothing because of the helping nature of the island. Travelers always feel and very much aware of this that the Japanese people are very honest and there is no insecurity anywhere in Japan.

Picturesque beauty of Japan is another common point that almost all the writers have noticed and mentioned in greater respect. However, only one book that I have found has different opinion.

In 1954 an Indian politician Seth Govind Das (1896-1974) travelled Japan and other countries of the world. He wrotePrithivi Parikrma (Revolving Earth) about his experiences and impressions. His impression about cleanliness of Japan were different from his former and latter travelers.

Most of Japan's images in Hindi travel memoires are full of praises and inspirations for Hindi raders. Decentralization of growth is also a very good aspect in Japan. Even in village life, travelers noticed that electricity have been available there since 1930s or perhaps before that. All the Japanese are well educated and there is a system of universal education for all Japanese nationals. And there is no discrimination of any kind. No caste system, no religious enmity and other kind of social problems are visible in Japan.

Behind the progress of Japanese society all the writers have highlighted that the Japanese education system has been the main factor. Educated, high-skilled, hardworking and honest people have created development for their society.

Keywords: Japan, Society, Culture, Travel memoirs, Impression

आधुनिक भारत के इतिहास में भारतीय लोगों को जापान की पहली छवि विवेकानंद के जापान आने के बाद प्राप्त होती है।[१] १८९३ ई. में अमेरिका के शिकागो में धर्म-संसद में भाग लेने के लिए जाते हुए विवेकानंद कुछ दिनों तक जापान में रहे और उन्होंने जापान की सुन्दरता से प्रभावित होकर सभी भारतीय युवाओं को एक बार जरूर जापान आने की सलाह दी।[२] जापान की यह पहली छवि हिंदी साहित्य में भी किसी न किसी रूप में आई। मेरी जानकारी में हिंदी भाषा में जापान सम्बन्धी पहली किताब भी विवेकानंद की यात्रा के बाद निकली।[३] नागरीप्रचारिणी सभा पत्रिका में जापान के समाज, इतिहास, व्यापार, देशभक्त लोगों और भारत-जापान की तुलना करते हुए एक लेख भी १८९८ ई. में प्रकाशित हुआ।[४] फिर उसके बाद १९१६ ई. में रवीन्द्रनाथ ठाकुर की जापान यात्रा के बाद भी हिंदी-समाज और साहित्य में जापान को लेकर उत्सुकता बढ़ी।[५] लेकिन हिंदी साहित्यकारों में सबसे पहली जापान यात्रा रवीन्द्रनाथ ठाकुर की यात्रा के उन्नीस साल बाद १९३५ ई. में सम्पन्न हुई। महापंडित राहुल सांकृत्यायन १९३५ ई. की गर्मियों में लगभग तीन महीने के लिए जापान आये। उनके बाद हिंदी साहित्य में सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' की जापान यात्रा (सन् १९५७-५८) और जापान से उनके सम्बन्ध की प्रसिद्धि सबसे ज्यादा है।[६] अज्ञेय और जापान को लेकर हिंदी साहित्य में शोध-कार्य भी हुआ।[७] अज्ञेय ने जापान में रहते हुए और बाद में भारत में रहते हुए जापान से प्रभावित होकर अनेक कविताएँ-रचनाएँ भी लिखीं।[८] इन सभी स्थितियों से जापान की एक भरी-पूरी सुंदर छवि हिंदी साहित्य में बन चुकी है।

२४ अप्रैल १९५७ से लेकर ५ जनवरी १९५८ के बीच 'अज्ञेय' ने जापान में रहकर ३७ कविताएँ लिखी थीं।[९] लेकिन इन सैंतीस कविताओं में सबसे ज्यादा चर्चित कविता 'सम्राज्ञी का नैवेद्य-दान' है-

"हे महाबुद्ध!/ मैं मंदिर में आयी हूँ/ रीते हाथ:/ फूल मैं ला न सकी।/ औरों का संग्रह/ तेरे योग्य न होता।.../ हे महाबुद्ध!/ अर्पित करती हूँ तुझे।/ वहीं-वहीं प्रत्येक भरे प्याला जीवन का,/ वहीं-वहीं नैवेद्य चढ़ा/ अपने सुंदर आनंद-निमिष का,/ तेरा हो,/ विगतागत के, वर्तमान के, पद्मकोश!/ हे महाबुद्ध!"[१०] (तोक्यो, २५ सितम्बर १९५७)

यह कविता हिंदी साहित्य में जापान की एक कोमल, पवित्र, प्रकृति-हितैषी और बौद्ध-धर्मावलम्बी छवि को भी निर्मित करती है। नारा के बौद्ध मंदिर में महाबुद्ध के प्रति जापान की सम्राज्ञी कोमियो की आस्था के साथ-साथ इस कविता में जापान के लोकमन में व्याप्त प्रकृति को अक्षत, अनाहत रखने का भाव भी देखा जा सकता है। सौन्दर्य और श्रद्धा के प्रति जापानी दृष्टि का अनोखापन और समन्वय भी इन पंक्तियों में देखा जा सकता है। प्रकृति के प्रति जैसा पवित्र सम्बन्ध यहाँ पंक्तियों में दिखता है, वही भाव हिंदी पाठक जापानी समाज का उसकी प्रकृति के साथ सोचता-समझता है। यह कविता हिंदी में जापान की छवि का सुंदर और सटीक उदाहरण प्रस्तुत करती है।

'सम्राज्ञी का नैवेद्य-दान' के अलावा 'असाध्यवीणा' 'हिरोशिमा' कविताओं और 'उत्तर प्रियदर्शी' नाटक में भी 'अज्ञेय' पर जापान के प्रभाव को देखा जा सकता है।[११] 'अज्ञेय' ने न केवल हिंदी साहित्य को जापान की यह छवि प्रस्तुत की बल्कि उन्होंने 'हाइकु' कविताओं का भी हिंदी समाज से परिचय करवाया। ५-७-५ अक्षरों में लिखी जाने वाली हाइकु कविता को हिंदी में अनूदित भी पहले-पहल अज्ञेय ने ही किया। १९५९ ई. में उन्होंने 'अरी ओ करुणा प्रभामय' संकलन में जापान के प्रसिद्ध रचनाकारों की हाइकू कविताओं का हिंदी में अंग्रेजी से सुंदर अनुवाद किया था। इस संकलन में हाइकू के नियम पर आधारित अन्य कविताएँ भी हैं। 'अज्ञेय' द्वारा कवि मात्सुओ बाशो (१६४४-१६९४) की हाइकू का यह अनुवाद हिंदी में भी पर्याप्त चर्चित है-

"ताल पुराना/ कूदा दादुर/ ----गुड्डुप।"[१२]

हिंदी साहित्य में जापान की एक छवि इन पंक्तियों में भी दिखती है। कविता और भावों को संक्षिप्त रूप में वर्णित-चित्रित करने का कौशल हाइकू में देखने को मिलता है।

जापानी समाज और संस्कृति की जो छवियाँ हिंदी साहित्य और साहित्यकारों में प्रचलित हैं, उनमें से कुछ का उल्लेख करते हुए कवि मंगलेश डबराल ने अपने जापान यात्रा-संस्मरण 'हाइकू के इर्दगिर्द' में लिखा है- "हिरोशिमा, नागासाकी, बोन्साई, इकेबाना, किमोनो, काबुकी, नो, हाइकू, तांका, रेइकी, राशोमन, कुरोसावा, इमामुरा, ओज़ु, कावाबाता, ओसामु दज़ाई, केंज़ाबुरो ओये, शुन्तारो तानिकावा, समुराई, सुमो, हाराकिरी। जापान जाते समय कई नाम दिमाग में उभरते हैं। शायद ऐसा कोई दूसरा देश नहीं है जो एक साथ इतने सारे बिम्बों की याद दिलाता हो।"[१३]

इस उद्धरण में जापान के अनेक बिम्ब और छवियाँ अंकित हैं। दूसरे विश्वयुद्ध में जापान ने जो महाविनाश सहा उसका जिक्र सबसे पहले हिरोशिमा और नागासाकी के रूप में भारतीय मन में उभरता है। जापान की प्रकृतिप्रियता, पहनावा, नाटक, नृत्य,

कविता, स्पर्श चिकित्सा पद्धति, फिल्म, फिल्म निर्देशक, कवि-लेखक, खेल और अंत में आत्म बलिदान का सर्वोच्च रूप हाराकीरी[१४] की छवि कवि मंगलेश डबराल जी के ही नहीं अनेक भारतीय लोगों के मन में आती है।

इसी प्रकार हिंदी साहित्य में जापान के समाज और संस्कृति की छवियाँ अनेक यात्रा-संस्मरणों में भी प्रस्तुत की गई हैं। जापान पर आधारित हिंदी साहित्य में जापान की छवियों को देखा-समझा जाए तो इससे जापान में हिंदी पढ़ रहे विद्यार्थी भी अवश्य ही तुलनात्मक दृष्टि से जापानी और हिंदी दोनों भाषाओं के साहित्य में मौजूद यात्रा-साहित्य में दर्ज की गई छवियों को देख-परख सकेंगे।

हिंदी में जापान पर आधारित विपुल साहित्य नहीं मिलता है। लेकिन भारतीय समाज विशेषकर हिंदी प्रदेशों में जापान की एक छवि मिलती है। हिंदी साहित्य में जापान को किस तरह से देखा-दिखाया गया है, इसकी पड़ताल इस लेख में की जाएगी।

आधुनिक हिंदी साहित्य की उन्नीसवीं सदी के अंतिम दशक और बीसवीं सदी के प्रथम चरण में जापान पर परिचयात्मक लेख और पुस्तक जरूर मिलती है लेकिन जापान पर आधारित यात्रा-संस्मरण की कोई किताब इस बीच नहीं मिलती है। उन्नीसवीं सदी के आखिरी दशक में जापान पर हिंदी भाषा में एक छोटी-सी किताब 'जापान का संक्षिप्त इतिहास'[१५] उपलब्ध होती है। इस किताब के लेखक रामनारायण मिश्र जी ने यह पुस्तक बिना जापान आए ही लिखी थी।[१६] इसलिए इसे केवल पुस्तकों को पढ़कर लिखी पुस्तक ही माना जा सकता है। इस किताब में लेखक द्वारा अर्जित अनुभव दर्ज नहीं हैं और न ही वे छवियाँ हैं जो लेखक ने खुद देखी हैं।

जापान जाकर वहाँ के समाज और संस्कृति पर रचित साहित्यिक रचनाओं को खोजने पर बहुत ही कम सामग्री हमें मिलती है। जापान के जीवन की विभिन्न छवियों को रखने वाली नौ किताबें १९३६ ई. से लेकर २०२० ई. तक की समयावधि में मिली हैं।[१७] साथ ही आठ लेख भी मिल सके हैं।[१८] बीसवीं सदी के पाँचवें और नौवें दशक से जुड़ी कोई किताब या लेख अभी तक नहीं मिल सका है। अभी इस सम्बन्ध में और किताबें तथा लेख मिलने की उम्मीद है। इस लेख में अभी तक प्राप्त सीमित अध्ययन सामग्री का उपयोग किया जा सका है। आगे इस लेख के दूसरे हिस्से में अन्य किताबों को भी शामिल करने का विचार है।

१९३५ ई. में महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने जापान की यात्रा की थी। अगले वर्ष उनकी 'जापान' शीर्षक किताब प्रकाशित हुई। इस किताब के द्वारा पहले-पहल आँखों देखे दृश्यों के आधार पर बड़े विस्तार से जापान के समाज और संस्कृति की अनेकानेक छवियों को हिंदी पाठकों के सामने प्रस्तुत किया गया था। इस किताब से हमें दूसरे विश्वयुद्ध से पूर्व के जापान की व्यापक और समृद्ध छवि देखने को मिलती है।

४ मई १९३५ को राहुल सांकृत्यायन जापान पहुँचे। उन्होंने जापान के प्रथम दर्शन के बारे में लिखा- "५ बजे जापान की और अधिक भूमि दिखलाई पड़ने लगी। दाहने-बायें दोनों तरफ हरे-भरे पार्वत्य देश हैं। दाहनी ओर क्यूशू-द्वीप और बायीं ओर जापान का सबसे बड़ा द्वीप होन्शू है। घर दियासलाई के घरौंदे से और प्रायः एक तले दिखाई पड़ रहे हैं। इन छोटी दीखती बस्तियों में भी जगह-जगह चिमनियों से धुआँ निकल रहा था, जो बतला रहा था कि, जापान कहाँ तक उद्योग प्रधान हो चुका है।"[१९]

जापान आने वाले प्रायः सभी हिंदी लेखकों ने जापान की इसी औद्योगिक तरक्की की ओर जरूर इशारा किया है। जापान एशिया के देशों में सबसे पहले औद्योगिक शक्ति के रूप में खड़ा होने वाला देश बना। जापान के पहले दर्शन के समय प्रायः सभी लेखकों ने जापान की आर्थिक सम्पन्नता के बारे में लिखा है। यहाँ राहुल सांकृत्यायन भी जापान के उद्योग प्रधान होने की बात को स्पष्ट लिख रहे हैं।

१९३५ ई. के बाद जापान के साथ बहुत कुछ अमानवीय अघटित घटित हुआ। दो परमाणु बमों के अलावा अनगिनत बमों के हमलों से जापान पूरी तरह से तहस-नहस हो चुका था। लेकिन कुछ ही सालों में अपनी मेहनत से जापान फिर से उठ खड़ा होता है। जापान के हिरोशिमा शहर को देखकर जापान के पुनर्जीवित और पुनःस्थापित होने की बात समझ आती है। इस बारे में भदन्त आनंद कौसल्यानन ने १९५२ ई. के लगभग लिखा है-"जिसे किसी नगर का विध्वंस और निर्माण एक साथ देखना हो, वह हिरोशिमा को देखे। सात वर्ष पहले अमरीकी अणुबम ने जिस नगर को जमीन पर सुला दिया था, जापानी कर्तृत्व ने उसे फिर उठाकर खड़ा कर लिया है। जापान के जाग्रत और कर्तव्यपरायण होने का हिरोशिमा सबसे बड़ा सर्टिफिकेट है।"[२०] जापान के कर्तव्यपरायण होने का सर्टिफिकेट पूरी दुनिया में पहुँच चुका है। इसलिए जापान की तरक्की को अपनी आँखों से देखने के लिए अनेक सैलानी यहाँ आते हैं। भारत के सैलानियों को भी जापान की चमक यहाँ खींच लाती है। यहाँ वे रोज दीवाली जैसी चकाचौंध देखते हैं। जापान की तरक्की का और उसके प्रथम दर्शन का वर्णन १९७१ ई. में प्रमोदचन्द्र शुक्ल ने कुछ प्रकार किया है, जैसे राहुल सांकृत्यायन १९३५-३६ ई. में कर रहे थे।

"दूर पर असंख्य दीप-मालाएं चमकने लगीं। क्या इस देश में आज दीवाली है? मुझे हरिद्वार में शाम के समय हर की पैढ़ी पर बहुत से श्रद्धालु भक्तों का जल में दीप विसर्जित करने का दृश्य याद हो आया। गंगा के प्रवाह में बहते दीपों की कतारों की तरह इस समुद्र में सैकड़ों-हजारों दीपों की कतारें दिखाई दे रही हैं। थोड़ी देर बाद आँखों के सामने ज्योति पुंज ही फूट पड़ा। रंगीन और तेज प्रकाश की असंख्य पंक्तियों के बीच हवाई जहाज उड़ रहा था। नीचे सड़कों की रेखाएं स्पष्ट होने लगीं। उन पर दौड़ती हुई कारों की लाल-बत्तियां लकीर खींचती-सी आगे बढ़ रही थीं। जहाज और नीचे आया और हनेदो [हनेदा] हवाई अड्डे के चारों ओर मंडराने लगा। चारों ओर सफ़ेद और पीली बत्तियों का लावा बह रहा था।"[२१]

जापान की समृद्धि का जो चित्र राहुल जी ने १९३६ ई. में हिंदी साहित्य में प्रस्तुत किया था, लगभग ३५ साल के अंदर आए भयानक बदलावों के बाद फिर से तरक्की पाने की जिद के कारण जापान में दीवाली जैसी दीप-मालाएँ सब को दिखती हैं। जापान की हिंदी साहित्य में जो छवियाँ उकेरी गई हैं उसे कई भागों में बाँटकर देख सकते हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण छवि आर्थिक क्षेत्र में उन्नति पाने वाले देश के रूप में जापान की छवि है। इसका कुछ-कुछ चित्रण पिछले तीनों उद्धरणों में हमने देखा। इसके बाद जापान की दुनिया में विशिष्ट सामाजिक-सांस्कृतिक छवि है। जिसे जापान आने वाले प्रायः सभी हिंदी लेखकों ने भरपूर देखा और दर्ज किया है। इसके अंतर्गत ही जापान के समाज की विशेषता का भी समावेश हो जाता है। समाज के लोगों के व्यवहार के पुंज को ही संस्कृति के भीतर देखा रहा है। शिक्षा और धर्म को भी अलग से न देखकर सामाजिक छवि के साथ रख सकते हैं। इस प्रकार जापान की आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक तीन प्रकार की विशिष्ट छवियाँ साहित्य में दिखती हैं। जापान की चौथी बड़ी छवि प्रकृति के दायरे में आती है। इसे जापान की प्राकृतिक चेतना आधारित छवि भी कह सकते हैं। इस तरह से बड़े व्यापक रूपों में जापान की चार बड़ी छवियाँ हिंदी यात्रा-संस्मरणों में देखने-पढ़ने को मिलती हैं।

जापान की आर्थिक छवि

जापान की आर्थिक उन्नति से ही आकृष्ट होकर अनेक देशों के लोग जापान आते हैं। भारत से जापान आने वाले हिंदी लेखक भी इस विचार के अपवाद नहीं हैं। शुरू से ही जापान अपने प्रभाव में सबको ले लेता है। जापान में किस प्रकार से औद्योगिक विकास हो रहा था? उसका एक नमूना ओसाका की इस छवि के साथ दिखाया गया है। जापानी कपड़ों की दुनिया में बड़ी धूम थी। जिसे ओसाका में बड़े पैमाने पर बनाया जाता था। यह दूसरे विश्वयुद्ध से पहले के ओसाका की एक छवि है। ओसाका के कपड़ा-उद्योग की जो छवि राहुल सांकृत्यायन के मन में बनी, उसे व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा है कि "ओसाका जापान का लंकाशायर-मानचेस्टर है।"[२२] निरंतर उन्नति करते रहने और उसके बाद भी सामान्य बने रहने की भी छवि जापान की है। मामूली-सी चीजों का भी बेहतर इस्तेमाल करना जापान की आर्थिक छवि में ही आता है।[२३] साथ ही जापान अपनी तरक्की के लिए अमेरिकी समाज की सुविधाओं को अपना आदर्श मानकर चलता है।[२४]

परमाणु बम की मार से दोबारा उठ खड़ा होकर जापान फिर से उन्नत देशों की कतार में जल्दी ही शामिल हो गया। दूसरे विश्वयुद्ध के भयानक विनाश के बाद बीस से भी कम सालों में उसने दुनिया की सबसे तेज़ चलने वाली ट्रेन चलाकर सबको चमत्कृत कर दिया था। 'हिकारी' नामक यह गाड़ी तोक्यो और ओसाका के बीच २१० किलोमीटर प्रति घंटे की गति से चलने वाली संसार की सबसे पहली और सबसे तेज़ ट्रेन बनी।[२५] इसी साल यानी १९६४ ई. में ही जापान में ओलम्पिक खेलों का आयोजन हुआ। तोक्यो आने वाले सभी लोग जगमग करते तोक्यो और वहाँ दौड़ती हजारों कारों को देखकर जापान के आर्थिक विकास का अनुमान सहज रूप से ही कर सकते हैं।[२६]

जापान ने बहुत जल्दी ही अपने देश में भौतिक रूप से समृद्धि को सबकी पहुँच तक ला दिया। इसके प्रमाण हैं जापान के हर क्षेत्र में खुलने वाले दिपातो अथवा डिपार्टमेंटल स्टोर[२७]। ये ऐसे स्टोर हैं जिनमें जापान की आर्थिक छवि के साथ-साथ जापान में मौजूद वस्तुओं की एक व्यापक प्रदर्शनी भी देख सकते हैं। तोक्यो में सबसे ज्यादा लोग निवास करते हैं इसलिए वहां के डिपार्टमेंटल स्टोर सबसे बड़े भी हैं। इन बेहद बड़ी दूकानों में दैनिक जीवन और आनंद से जुड़े अधिकतर सामानों की बिक्री होती है। ऐसे स्थानों पर जाकर लोग घूमने का भी आनंद लेते हैं। कई बार इन दूकानों में संसारभर की भी चीजें उपलब्ध होती हैं। जापान ने अपनी समृद्धि को पूरे जापान में भी फैलाने का भी काम किया है। इसलिए आर्थिक रूप से जापान के गाँव भी समृद्ध हैं। जापान का गाँव समाज भी कितना उन्नत हो चुका है, इसकी बानगी इस कथन में दिखती है। "जापान में बिजली गाँवों तक में पहुँच गई है, इसलिए उसका इंतजाम सभी जगह है।"[२८] भारत से आया व्यक्ति जापान की इस उन्नति को देखकर जरूर आश्चर्यचकित होता है। जापान के गाँव की जिन्दगी और वहाँ के विकास की एक विस्तृत छवि बड़े प्रामाणिक रूप से राहुल सांकृत्यायन ने प्रस्तुत की है।[२९] जापान की आर्थिक छवि बहुत कुछ साम्य आधारित है। इस आर्थिक छवि का स्याह पक्ष देखने

में कम ही आता है। गरीबी के दृश्य और उनका वर्णन कम ही लेखकों ने किया है। फिर भी इस स्थिति का दूसरा पक्ष बिल्कुल अनुपस्थित नहीं है। बीसवीं सदी के नौवें दशक में काशीनाथ सिंह ने जापान की आर्थिक समृद्धि के पीछे छिपे दूसरे पक्ष के बारे में लिखा। "वह साथ मुझे जापान की तलछट दिखानेवाला था। "यह जगह है, जहाँ अनजाने लोग आने का साहस नहीं करते, क्योंकि यह चोरों, गुंडों, बेकारों, निठल्लों और आवारों का क्षेत्र है। वे किसी भी नए आदमी का सामान मार-पीटकर छीन सकते हैं। कत्ल भी होते हैं यहाँ।" कहते हुए सुजूकि ने हिदायत दी कि झोला और कैमरा ठीक से सम्भाल रखूँ। मैंने चारों ओर ध्यान से देखा। पूरे जापान ने यही एक जगह दिखी, जो जापान जैसी नहीं थी।"[३०] लेकिन जापान में ऐसे दृश्य अपवाद हैं। इसलिए लेखक ने भी इसे 'जापान जैसी' जगह 'नहीं थी' लिखा है।

जापान की सामाजिक छवि

जापान के लोगों के पहनावे के बारे में राहुल सांकृत्यायन जी ने विस्तार से लिखा। जापान के लोगों की छवि इन शब्दों के द्वारा चित्रित की गई है। जापान की स्त्रियाँ किमोनो पहनती हैं। यह इन वर्षों में कुछ बदला है। लेकिन आज से पचासी वर्ष पहले के समाज की एक छवि यहाँ पढ़ने को मिलती है। पुरुषों के कपड़े यूरोपीय ढंग के हो चुके थे। लेकिन औरतों के कपड़ों में इतना बड़ा बदलाव तब देखने को नहीं मिलता था। "पुरुष अधिकतर हैट, कोट, पतलून में थे, किन्तु स्त्रियाँ बहुधा अपनी जातीय पोशाक किमोनो पहने हुई थीं। कीमोनो, विशेषकर स्त्रियों का कीमोनो, बहुत ही सुंदर पोशाक है। उसका कलापूर्ण कमरबंद तो हद से अधिक सुंदर है। किमोनो एड़ी तक लम्बा बाहों का चोगा-सा होता है। इसका कमरबंद ७-८ अंगुल चौड़ा होता है और पीठ पर अधिक सुंदर बनाने के लिए एक चौड़ी कपड़े की परत देकर उसे चौड़ा कर देते हैं। अधिकांश स्त्रियाँ रबर के चप्पल पहने थीं और कुछ के पैरों में पूर्वी युक्त प्रान्त में बरसात के दिनों में इस्तेमाल किये जाने वाले बद्दीदार खड़ाऊं थे। जापानी स्त्रियों की बालों की सजावट में अब बहुत अंतर आ गया है, तो भी दस-बारह वर्ष की कम उम्र वाली लड़कियों को छोड़कर किसी के बाल कटे नहीं हैं। अगल-बगल, आगे-पीछे तथा चाँद पर बालों को फैलाते हुए जूड़ा बनाने का रवाज अब बहुत ही कम हो गया है। उसकी जगह आगे छोटी-सी तिरछी माँग-बनाकर पीछे काँटों से जूड़ा बांधा जाता है। इसमें शक नहीं कि, यह केश सज्जा पहले की अपेक्षा अधिक सुंदर मालूम होती है।"[३१] हिंदी के पाठकों को किमोनो की बारीकी से जानकारी भी यहाँ दी गई है। साथ ही औरतों की केश-सज्जा का भी सजीव चित्रण यहाँ प्रस्तुत है। किस प्रकार की चप्पलें जापान की औरतें पहनती थीं उसकी भी एक छवि यहाँ दिखाई गई है।

जापान के लोगों में सामूहिक स्नानागार का भी प्रचुर चलन है। साथ ही जापान में नग्नता का विचार भी भारत से काफी भिन्न है। जब गर्म पानी के कुण्डों, (ओनसेन) में लोगों को निर्वस्त्र देखा जाता है तो विदेशी लोगों के लिए यह बड़ी चौंकाने वाली बात मालूम पड़ती है। लेकिन जापान की यह छवि बड़े ही मनोरंजन ढंग से हिंदी के पाठकों तक पहुँचती है। "सवेरे ही हमारा नहा लेने का समय था। किन्तु हमारे गुजराती साथी ने गुसलखाने की जो हालत बयान की उससे हमें अपना इरादा छोड़ देना पड़ा। वे कह रहे थे, स्त्री-पुरुष दोनों नंगे एक ही कोठरी में नहा रहे हैं।"[३२] जापान में ऐसे तप्तकुण्डों का बड़ा महत्व है। हर साल लाखों-करोड़ों लोग इनमें नहाने आते हैं। इनमें सबसे ज्यादा लोकप्रिय ओनसेन या तप्तकुण्ड बेप्पू में हैं।[33] जापान में स्नान का समय और संस्कार अलग है। कई लोग इसे पूजा की मानते हैं। सामूहिक स्नान को शर्म के साथ जोड़कर नहीं देखते हैं। आठवें दशक में कृष्णनाथ ने जापान में स्नान के बारे में लिखा- "स्नान को भी जैसे पूजा की तरह करते हैं। घरों में पहले फुहारे से जैसे नहा-धोकर टब में १५-२०मिनट बैठकर थकान मिटा लेते हैं। अब घर छोटे हो रहे हैं। सभी घरों में टब नहीं है, तो 'पब्लिक बाथ' है। वहाँ पहले 'शावर' ले लेते हैं। खूब अच्छी तरह देह धो-पोंछ लेते हैं। सब वस्त्र छोड़ देते हैं। सिर्फ एक तौलिया देते हैं। उसे लेकर नंगे होकर एक बड़े गरम पानी के टब में बैठ जाते हैं। एक ही टब में २५-३० भी बैठते हैं।"[३४] जापान में स्नान का समय प्रायः रात का है। सुबह स्नान कम ही प्रचलित है।

जापानी समाज पर बुद्ध धर्म की अमिट छाप हर ओर देखी जा सकती है। शिन्तो धर्म को मानने वालों की संख्या भी कम नहीं है। न ही शिन्तो जिन्जा की कमी है। लेकिन बौद्ध धर्म और जापान के लोगों के उससे सम्बन्ध पर लेखकों ने खूब लिखा है। जापान में निर्मित पहले बौद्ध मन्दिर की छवि को राहुल जी ने इस रूप में उकेरा है कि यहीं से जापान की सभ्यता की शुरुआत मानी है। "होर्योजी मन्दिर क्या है? जापानी जाति का सर्वस्व। यदि आपने होर्योजी मन्दिर नहीं देखा, तो कह सकते हैं, आपने जापान को नहीं देखा। होर्योजी वह स्थान है जहाँ जापान ने सभ्यता, कला, विज्ञान, धर्म को आरम्भ किया, पूरा किया। होर्योजी जापान का सबसे पुराना बौद्ध मंदिर है, इसकी स्थापना ५८६-८७ ई. में (सम्राट हर्षवर्धन से भी पूर्व) जापान के अशोक राजकुमार शोतोकू ने की थी। इसकी कुछ इमारतें संसार की सबसे पुरानी लकड़ी की इमारतें हैं।"[३५] इस मंदिर के स्थापत्य की ओर भी यहाँ

इशारा किया गया है। साथ ही जापान में बौद्ध धर्म को प्रचलित करने वाले राजकुमार शोतोकू की तुलना उन्होंने सम्राट अशोक से की है। जिस प्रकार भारत में बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार में सम्राट अशोक का अहम योगदान है, उसी प्रकार जापान में राजकुमार शोतोकू की भूमिका अविस्मरणीय है। बौद्ध धर्म की व्याप्ति को जापानी समाज के हर हिस्से पर देखा जा सकता है। "जो यात्री दो-चार सप्ताह भी और अंग्रेजी ढंग के होटलों में रहते मोटरों में दौड़ते जापान की सैर कर लौट जाते हैं, उन्हें भी इस बात का पता लगने में जरा भी देर नहीं लगती, कि जापान के रोम रोम में बौद्ध धर्म घुसा हुआ है। शहरों में चलें, हर सड़क पर हर गली में तिरकोनी छतवाले बौद्ध-मंदिर मिलेंगे। नित्ता-जिस गाँव में मैं पौने दो मास रहा हूँ, सिर्फ चार हज़ार की बस्ती है–किन्तु यहाँ भी १४ बौद्ध-मंदिर हैं। गाँव में घूमिये, हर तीस कदम पर किसी बोधिसत्व–विशेषकर क्षितिगर्भ (जिजो बोसत्सु) की मूर्ति आपको मिलेगी।"[३६]

स्त्री शिक्षा के मामले में भी जापानी समाज की एक अलग छवि है। स्त्री को शिक्षा और आगे के जीवन के लिए मजबूत बनाने का कार्य बहुत कुशलता से किया जाता है। इसे इन पंक्तियों में निहित जापानी स्त्रियों की छवि में देखा जा सकता है। "जापान में लड़कियों के ऐसे बड़े-बड़े बहुत से स्कूल हैं। उनमें पढ़ने वाली लड़कियों की यह संख्या बतला रही है, कि जापानी पिता अपनी लड़कियों को सुशिक्षित देखना चाहते हैं। पढ़ाई के अतिरिक्त लड़कियों को भोजन बनाना, सीना-पिरोना, फूल सजाना, संगीत, चित्रण, तथा चाय-विधान भी सिखलाया जाता है।"[३७] जापान आने के बाद जापान की स्त्रियों को समाज के हर कार्य में बराबरी और कई बार तो ज्यादा अनुपात में योगदान देते हुए देख सकते हैं। इसका एक बड़ा कारण जापानी स्त्रियों की शिक्षा में निहित है। यह छवि समय के साथ और बेहतर और व्यापक होती गई है। जापान आने वाले कमोबेश सभी यात्रियों ने इसे देखा और दिखाया है। इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक में जापान की यात्रा करने वाले एक और लेखक ने स्त्रियों की समाज में उपस्थिति पर लिखा है- "यहाँ की स्त्रियाँ कर्मठ हैं, आधुनिक हैं, खुले विचारों की हैं। वे सड़कों पर, ट्रेनों में, बसों में, कारों में, दुकानों में, दफ्तरों में यानी की सर्वत्र - चाहे दिन हो या रात हो - बड़ी संख्या में उपस्थिति दर्ज करवाती हैं। राधा जी [लेखक की पत्नी] का तो कहना था कि यहाँ पुरुषों से ज्यादा स्त्रियाँ दिखाई देती हैं।"[३८] यह स्थिति स्त्रियों की शिक्षा के बिना मुमकिन नहीं थी। स्त्री को मजबूत करने से जापान का समाज भी मजबूत होता गया है।

जापान में स्त्री की मजबूत छवि के साथ एक पारम्परिक और विषम छवि भी मिलती है। स्त्री के गेशा रूप की जापानी समाज में अलग अहमीयत है। लेकिन स्त्री की इस शिष्ट, शिक्षित और कला-प्रवीण स्थिति को पुरुष समाज अपने मनोरंजन के लिए निर्मित करता है। ऐसा ही जापान में भी दिखता है। जापान के लोग भारत या बाहर से आने वाले लोगों में गेशा (या गीशा या गेइशा या गैश्या) को 'जापानी कला की पराकाष्ठा'[३९] कहते हैं। लेकिन इनके भीतर के दुःख को यह समाज छिपाता है। इस दुःख की छवि को भी एक यात्रा-संस्मरण में दर्ज किया गया है। "मिचिकोसान के मुख पर भावनाओं का समुद्र उमड़ता हुआ दिखलाई दिया। उसकी आँखों में आँसू उभरते हुए लगे। परन्तु एक गैश्या अपने व्यक्तिगत भावों को मान्य ग्राहकों के सम्मुख कभी प्रकट नहीं होने देती।"[४०]

इस समय तोक्यो संसार का सबसे बड़ा शहर है। लेकिन आज से अस्सी-नब्बे साल पहले यह दुनिया का तीसरा सबसे बड़ा शहर था। जापान भूगोल में भले ही कम दिखता हो लेकिन जनसंख्या में यह दुनिया में बहुत नीचे नहीं है। "शोगुन की राजधानी होते समय भी टोक्यो (येदो) की जनसंख्या दस लाख थी।...और आज टोक्यो की जनसंख्या ५४ लाख ३२ हज़ार है, अर्थात लन्दन (८२ लाख), न्यूयार्क (६९ लाख ३० हजार) के बाद तीसरा नम्बर टोक्यो का ही है।"[४१] बीते पचासी सालों में तीसरे से पहले नम्बर पर आने के साथ-साथ तोक्यो की जनसंख्या में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। तोक्यो अनेक लोगों को बहुत साफ़ सुथरा को कई लोगों को बहुत गन्दा भी लगा। तोक्यो की ऐसी ही एक विपरीत छवि गोविन्द दास जी ने प्रस्तुत की है। इसमें उन्होंने तोक्यो की भीड़, लोगों की विनम्रता के साथ तोक्यो की गंदगी[४२] का भी बयाँ किया है। क्योतो की छवि जापान के समाज में अलग से पहचानने लायक है। जापान के अनेक मन्दिरों की ही नहीं अनेक रूपों में मौजूद संस्कृति की उपस्थिति भी क्योतो में साफ़-साफ देखी जा सकती है। "आज भी कला की दृष्टि में क्योतो का जापान भर में प्रथम नम्बर है। आज भी बड़े-बड़े चित्रकार, काष्ठ-प्रस्तर-शिल्पी क्योतो के विख्यात हैं। हाल में जब सेनेमा (सिनेमा) फिल्म कम्पनियों ने काम शुरू किया, तो क्योतो की अद्वितीय प्राकृतिक सुन्दरता को देख, उन्होंने फिल्म स्तुदियो (स्टूडियो) यहीं बनाये चित्र, नृत्य, कविता मानों क्योतो की हवा में है, इसलिए सांस्कृतिक विशेषता में क्योतो अव्वल है"[४३] तोक्यो से पहले लगभग हज़ार ग्यारह सौ वर्षों तक क्योतो जापान की राजधानी थी। इसलिए यह शहर भी अपनी एक विशिष्ट छवि पर्यटक के मन में छोड़ता है। इसी प्रकार ओसाका की भी एक छवि है। सबसे

पहले हम लोग ओसाका के कपड़ा-उद्योगों के बारे में पढ़ ही चुके हैं। इसे राहुल सांकृत्यायन 'लंकाशायर और मानचेस्टर' कह चुके हैं। वहीं कुछ लोग इसे नदियों की विपुलता के कारण पूर्व का 'वेनिस'[४४] भी कहते हैं।

शिक्षा, तकनीक और विज्ञान की उन्नति के बाद भी जापान की कई बातें सबको चौंकाती हैं। उनमें से एक है समाज में अंधविश्वास की कुछ उपस्थिति। जब राहुल सांकृत्यायन ने जापान में ज्योतिषी का गोरख-धंधा देखा तो उन्हें भी बहुत आश्चर्य हुआ। "बाहर आने पर हाते में आमने-सामने कुछ फासले पर दो पिजड़े रखे एक ज्योतिषी लोगों के भाग्य देख रहा था। प्रार्थी पैसा रख देता था। लालकी जाति की एक छोटी चिड़िया उसे दूसरे पिंजड़े के सामने रखे बक्स में डाल देती थी, और चोंच से बहुत सी पड़ी हुई चिट्ठियों में से एक ला रखती थी। उसी चिट्ठी में शुभाशुभ लिखा मिलता था। बेवकूफी समझिये या बुद्धिमानी यह सभी देशों में पाई जाती है। जापान में तो खैर इसके खिलाफ कानून भी नहीं है, इंगलैंड में कानून होने पर भी भाग्य देखने वालों का व्यवसाय खूब जोरों से चलता है।"[४५] यह सब देखने के बाद इस छवि को उन्होंने अंतर्राष्ट्रीय बेवकूफी की संज्ञा दी। जापान में इस प्रकार की अनेक मान्यताएँ हैं। इसे लोग रोचक अंदाज़ में करते भी हैं। लेकिन इससे जापान के लोगों में विज्ञान और कर्म के प्रति ढीले पड़ जाने की स्थिति नहीं आती है।

इसी प्रकार के एक यात्रा संस्मरण में लेखिका ममता कालिया जी ने एक मंदिर में मूर्ति के ऊपर हाथ फेरने और दर्द दूर होने की मान्यता सुनी तो खुद भी तोदायजी मन्दिर के बाहर मौजूद मूर्ति के घुटने पर हाथ फेरने लगीं ताकि उनके घुटनों का दर्द कम हो। इस सच को वे बखूबी जानती हैं कि इससे कुछ होने वाला नहीं लेकिन मनोरंजन के लिए ऐसा करने में क्या बुरा है? "तोदायजी में बौद्ध प्रतिमा के नीचे एक छोटा-सा मार्ग है, इतना संकरा कि एक अकेले व्यक्ति का भी उसमें से निकलना असंभव लगे। प्रचलित मान्यता है कि जो इसमें से पार निकल जाए, उसे मोक्ष प्राप्त हो जाता है। हम सबके मना करते-करते भी हरजेन्द्र चौधरी उसे पार कर जाते हैं। तोदायजी के बरामदे में एक अन्य मूर्ति की स्थापना है। इसका नाम जापानी और हिन्दुस्तानी से मिलकर बना है - भारद्वाज। बुद्ध की ही मुद्रा में बैठे इस देवता की महिमा यह बताई जाती है कि इसके स्पर्श में आरोग्य-शक्ति है। अगर इसका मस्तक छू लें तो आपका सिरदर्द ठीक हो जाएगा। अगर इसके पाँव छू लें तो पाँवों का दर्द छूमन्तर हो जाएगा। मैं देर तक भारद्वाज देव का घुटना छूती हूँ कि मेरे घुटनों का दर्द ठीक हो जाय। कुछ नहीं होता मनोरंजन के सिवाय।"[४६] जापान के सामाजिक जीवन की एक छवि यह भी है। इस तरह की अनेक मान्यताएँ जापान के प्रायः सभी मन्दिरों में मौजूद हैं। इसे अच्छे और बुरे के चश्मे से अलग एक छवि के रूप में भी देखा जा सकता है। इन मान्यताओं से जीवन के ढंग में कोई बहुत बड़ा बदलाव नहीं होता है।

जापान में अंग्रेजी का चलन अब भी बहुत कम है। लेकिन पहले आने वाले यात्रियों को अंग्रेजी के विश्वभाषा होने के भ्रम को तोड़ने वाले अनुभव जापान में सहजता से हो जाते हैं। "भारतवासियों में यह प्रचलित विश्वास है कि अंग्रेजी भाषा का ज्ञान कहीं भी काम दे सकता है। बाज़ारों, बैकों और आफिसों में, सड़कों और बस- स्टैंडों पर अंग्रेजी बोलने वाले को कोई कठिनाई नहीं होती। हम लोग अंग्रेजी को इतनी समर्थ और सार्वभौमिक भाषा समझते हैं कि उसके सहारे विद्या, व्यापार और विज्ञान की पेचीदगियों को सुलझाना सुलभ समझते हैं। मेरी यह गलतफहमी तोक्यो पहुँचते ही दूर हो गई। लम्बी साधना के बाद प्राप्त अंग्रेजी के ज्ञान की कुंजी को जापानी जन-मानस के तालों को खोलने में विफल पाया। अंग्रेजी का ज्ञान होते हुए भी मैं असहाय, बेबस और निरालम्ब था।"[४७] अपनी भाषा के प्रति सम्मान का भाव भी इन पंक्तियों में दिखता है। जापान में अंग्रेजी का वह प्रभाव नहीं दिखता है जो भारत में दिखता है।

जापान में ईमानदारी और समय की पाबंदी कोई अनोखी बात नहीं मानी जाती है। लेकिन भारत से आने वाले लोगों के लिए यह सुखद आश्चर्य से कम नहीं होता है कि जापान की बसें, ट्रेनें कभी देर से नहीं चलती हैं। "जमीन के ऊपर और नीचे चलने वाली रेलों के प्लेटफार्मों पर सदा भीड़भाड़ रहती है।...पहचानने की सुविधा के लिए इन गाड़ियों को अलग-अलग रंगों से रंग दिया गया है। इनकी समय की पाबंदी संसार भर में अनोखी है। आप अपनी घड़ी का टाइम उनके समय से ठीक कर सकते हैं।"[४८] जापान की यह छवि सभी देशों के लोगों को आकृष्ट करती है।

जापान ने अपने सभी नागरिकों को शिक्षित करने का बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। साथ ही पढ़ने की उनकी आदत भी सबको प्रभावित-चमत्कृत करती है। साधनहीन और शिक्षा की कमी वाले समाज के लोगों के लिए जापान के लोगों की यह छवि अभूतपूर्व लगती है। "सभी स्त्री-पुरुष सिमट कर शांत भाव से थोड़े से ही स्थान में खड़े हो जाते हैं। जैसे ही गाड़ी चलने लगेगी गाड़ी की छत से लटके चमड़े के बंधों को पकड़ लेंगे, ताकि अपने स्थान पर स्थिर रह सकें। बहुत से लोग अपनी पुस्तक या पत्र-पत्रिका निकालकर पढ़ने लगेंगे। मैंने तो कई बार इस भीड़ के बीच में लडके-लड़कियों को कोश खोलकर शब्दों के अर्थ दुहराते

देखा है।"[४९] जिस तरह जापान के लोगों में समय की पाबंदी या पढ़ने की आदत और ईमानदारी की भावना कूट-कूटकर भरी हुई है। उसी प्रकार सहयोग और मदद करने के भाव और व्यवहार भी अक्सर ही देखने को मिलते हैं। यह देश-प्रेम का ही एक रूप है कि अपने देश में आने वाले लोगों की हर प्रकार से मदद करने का विचार जापान के लोगों की अमिट छवि है। "लोगों से पूछने पर भाषा की कठिनाई खड़ी हो जाती है।...जब किसी जापानी को कोई बात समझ में नहीं आती तो वह आस-पास खड़े किसी दूसरे से उसके बारे में पूछेगा। अगर उससे भी ठीक उत्तर नहीं मिला तो किसी तीसरे से पूछेगा।"[५०] यह प्रवृत्ति जापान में आम है। इसे बाहर से आने वाले भले ही बड़े आश्चर्य से देखें लेकिन जापानी लोगों के लिए यह आचरण कोई नया या विशेष नहीं है।

जापान की सांस्कृतिक छवि

जापान में चाय की एक विशिष्ट संस्कृति है। जापानी समाज में चाय केवल पेय नहीं बल्कि आचरण का एक हिस्सा है। इस विषय में साहित्य सर्जना भी हुई है। भारतीयों को चाय की इस संस्कृति का पहला परिचय तो रवीन्द्रनाथ ठाकुर के लेख से मिला था।[५१] रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इस विषय पर अपनी यात्रा-पुस्तक में बड़े मनोयोग से लिखा भी है। जापानी लेखक तेनशिन ओकाकुरा (काकुज़ो ओकाकुरा) ने इस विषय पर एक बीसवीं शताब्दी के पहले दशक में 'द बुक ऑफ़ टी' नामक किताब भी लिखी थी। लेकिन हिंदी पाठकों को जापान की इस दिलचस्प संस्कृति का आँखों देखा वर्णन राहुल सांकृत्यायन की किताब से ही मिलता है। चाय के रंग-ढंग से लेकर उसके स्वाद की एक सजीव छवि यहाँ प्रस्तुत है- "हम लोग बैठ गए। जरा ही देर में चा-नो-यू (चाय का गर्म पानी) आ गया। काठ की छोटी-छोटी तश्तरियों में खिलौने जैसे छोटे-छोटे प्याले रक्खे गए।...एक तश्तरी में चीनी की कुछ रंग-बिरंगी मिठाई भी रक्खी गई। हमारे साथी चा-नो-यू को बीमारी का काढ़ा समझते थे। उनमें मेयोची महाशय के अतिरिक्त हमीं ऐसे थे, जो प्रसन्नता से तथा एक दो प्रशंसा के शब्दों के साथ जापानी चाय पीते थे। वह हल्का सा चाय का पानी था, उसमें न दूध, न चीनी और न नमक ही था।"[५२] भारत और दुनिया के देशों में चीन से चाय का प्रचार हुआ। लेकिन भारत की चाय की तुलना में चीन और जापान की चाय बिलकुल अलग होती है। जापान में पहले-पहल चाय पीने वाले भारतीयों को यह किसी हरी कसैली दवाई की तरह लगती है। लेकिन जापान में चाय का अपना विशेष सामाजिक और सांस्कृतिक महत्त्व है। इसे विशेष मान दिया गया है। इसे धार्मिक पद्धति से भी जोड़कर देखा जाता है। इसकी विशेष शिक्षा ली-दी जाती है। चाय पिलाने की विशिष्ट विधि का पालन और प्रदर्शन जापान की अपनी सबसे प्रमुख छवि है। चाय के साथ ही फूलों की विशिष्ट सज्जा जिसे इकेबाना[५३] कहते हैं, भी जापान की अपनी विशेषता है। इन दोनों के बारे में जापान के ही सज्जन लेकिन हिंदी के लेखक और अनेक वर्ष भारत में बिताने वाले भारत-प्रेमी साइजी माकिनो जी ने लिखा है- "पुष्प-सज्जा की उत्पत्ति के साथ ही साथ १५ वीं सदी में 'चानोयु' (चाय-विधि) का प्रारम्भ भी हुआ था। 'इकेबाना' 'चानोयु' के लिए अनिवार्य है। इकेबाना के बिना चानोयु नीरस है, अतः ये दोनों साथ-साथ चलने वाली जपानी जीवन-कलाएँ हैं।"[५४] इन दोनों जापानी कलाओं को भी हिंदी के लेखकों ने बखूबी दर्ज किया है।

राहुल सांकृत्यायन ने जापान में चाय को ध्यान-संप्रदाय से भी जुड़ा देखा है। इसका उद्भव उन्होंने चीन से माना है। "यह चाय-पान विधान ध्यान-संप्रदाय का विशेष आविष्कार है। बल्कि चाय स्वयं एक ध्यानीय भिक्षु द्वारा चीन से जापान लाई गई थी।"[५५] जापान की चाय भारत में पी जाने वाली चाय से किस प्रकार भिन्न है, इसे भी यहाँ कम शब्दों में सटीक रूप में दिखाया गया है।

जापान के लोग कितने कलाप्रिय होते हैं इसे प्रायः सभी लेखकों ने ही नहीं जापान आने वाले सभी लोगों ने बखूबी देखा है। जापान के लोग हर जीवन-स्थिति में कला को रचते हैं। इस बात को रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी महसूस किया और अपनी यात्रा में दर्ज किया।[५६] कलाविहीन जीवन के दर्शन न रवीन्द्रनाथ ठाकुर को जापान में हुए और न ही उनके बाद आने वाले किसी लेखक या पर्यटक को। राहुल सांकृत्यायन को भी सभी स्थानों पर कलाप्रियता- प्रकृतिप्रियता के सुंदर दर्शन होते हैं। "गरीब हो या अमीर, महल हो चाहे झोंपड़ा, सारी जापानी जाति अत्यंत कलाप्रिय, सौन्दर्योपासक जाति है। कलाप्रिय ही नहीं कलाकार है, जिसको हाथ लगाया, वही सुंदर बन गया।"[५७] जापान का एक भी हिस्सा इन तरह की कलाकारी से अछूता नहीं है। कोई भी जगह बेकार नहीं छोड़ी जाती है। इस छवि को देखते हुए सभी को महसूस होता है कि पूरा जापान ही छोटा-सा उद्यान है।

जापान में प्रकृति और कलाप्रियता के संदर्भ में वर्ग का बहुत बड़ा भेद नहीं है। अमीर- गरीब में भी इतना फर्क नहीं है कि वहाँ प्रकृति के प्रति उदासीनता के दर्शन होते हों। यदि छोटा घर है तो भी कला के सूक्ष्म दर्शन जरूर होते हैं। छोटे से स्थान पर भी छोटे-छोटे उद्यान बना लेने का कौशल एक अलग छवि का निर्माण करता है। "मजदूरों के घरौंदे में भी आप दोचार फूलों के गमले पाएँगे। यदि दो हाथ लम्बी चौड़ी भूमि घर के आगे पीछे है, तो वहाँ एक क्रीड़ा-उद्यान पाएँगे। क्रीड़ा-उद्यान की रचना में

जापान चरम सीमा को पहुँच गया है।"[५८] इस कलाप्रियता में प्रकृति आलम्बन के रूप में सदैव मौजूद रहती है। कला किस तरह आत्मीय सुख की सर्जना करती है, इसे जापानी समाज की सभी छवियों में आसानी से देखा जा सकता है। जापान की संस्कृति में एक बड़ी अनोखी चीज सभी लेखकों ने दर्ज की है कि नए और पुराने का बड़ा सुंदर समन्वय जापान में देखने को मिल जाता है। परम्परा के पुराने और नए रूपों की एक साथ मौजूदगी आराम से दिख जाती है।

जापान के प्राकृतिक सौन्दर्य की एक छवि ऐसे पेड़ों की भी है जिन्हें दुनिया बोन्साई के नाम से जानती है। मूल पेड़ों को बहुत छोटे रूप में छोटे-छोटे गमलों में सजाने की यह कला जापान की अनूठी कला है। "बेन्साई [बोन्साई] के वामन-वृक्ष लम्बे या चपटे गुलदस्ते में रखे जाते हैं। यह पेड़ करीब एक फुट ऊँचा होता है। वामन-वृक्ष जापानियों की विशेष-प्रथा है। वे विशालकाय पेड़ों को इस तरह लगाते हैं कि ऊँचाई रुक जाती है। ये वामन-वृक्ष कमरों की शोभा बन जाते हैं।"[५९] जापान में बड़ी से बड़ी और छोटी से छोटी जगह को सुंदर बनाने का ही यह भी एक नमूना है। अगर बहुत छोटी जगह पर बड़े पेड़ों को नहीं उगा सकते हैं तो वहाँ ऐसे वामन वृक्ष या बोन्साई पेड़ों को लगाया जाता है।

जीवन के अनेक क्रियाकलापों में ऐसे विचार या आचरण को चिह्नित किया जा सकता है जहाँ नया और पुराना विचार सहयोग की भूमिका में उपस्थित हैं। "यह पूर्व और पश्चिम, नए और पुराने, परम्परा और फैशन का अनूठा संगम है। बेसबाल, सिनेमा, टेलीफोन, स्वछंदता, निओं के प्रकाश, विह्स्की, शोर-गुल, नग्न-नृत्य, पाचिको की मशीन, पश्चिमी संगीत, गति और प्रगति के प्रति यहाँ के लोगों की उतनी ही आसक्ति है जितनी सूमो (कुश्ती) नोह और काबुकी नाट्यशालाओं, लकड़ी के मकानों, चेरी के फूलों, ज्योतिषियों, हाइकू-छंदों, परिवार, किमोनो, कागज़ के पंखों, जीवित मछलियों, चाय सेरेमनी और साके के प्रति है। वे घर के बाहर यूरोपीय वेश-भूषा पहिन कर पश्चिम के तौर-तरीकों का पालन करते हैं, किन्तु घर के अंदर किमोनो कस कर प्राचीन रीति-रिवाजों का अनुशीलन करते हैं।"[६०]

जापान में प्रकृति का सौन्दर्य सभी हिंदी किताबों में देखने को मिलता है। जापान आने वाले सभी लोग प्रकृति के साथ जापान के सम्बन्ध पर विस्तार और प्रशंसात्मक ढंग से ही लिखते हैं। राहुल सांकृत्यायन जी ने आर्थिक विकास और प्रकृति के साथ जापान के समन्वय पर अपनी बात रखी है।

कस्बों में फैक्ट्रियाँ और प्रकृति की रक्षा एक साथ करने का महत्त्वपूर्ण समन्वय जापान में दिखता है। यह छवि प्रकृति को स्नेह करने वाले लेखकों को बहुत आकृष्ट करती है। "कस्बों में जगह-जगह फैक्ट्रियाँ हैं। जंगल यहाँ नेपाल की तरह बेदर्दी से काटे नहीं गए हैं। जगह-जगह बांस, देवदार तथा दूसरे वृक्षों के वन हैं।"[६१] जापान की प्राकृतिक सुन्दरता में पहाड़ों का बड़ा योगदान है। जापान की सबसे प्रसिद्ध छवि जो पूरी दुनिया में जापान का प्रतिनिधित्व करती है वह जापान के सबसे ऊँचे पर्वत 'फूजी' की छवि है। इस पर्वत को देखने के लिए दुनियाभर से हजारों लोग रोज आते हैं।[६२] हर मौसम में इसकी सुन्दरता भी भिन्न और विशिष्ट होती है।

जापान के पहाड़ों को हिमालय के रूप में देखने वाली दृष्टि राहुल जी की रही है। उन्होंने सदाबहार वनों से ढँके पर्वतों को शिवालय के शिखर की तरह माना। "अपनी गाड़ी और लाइन का ख्याल छोड़ देने पर मालूम होता था, हम जापान में नहीं, हिमालय में आ गए हैं। चारों ओर जिधर देखिये, उधर सदा-हरित विशाल देवदार किसी विशाल शिवालय के शिखर की तरह खड़े हैं।"[६३] आर्थिक विकास को प्रकृति के विनाश का कारण नहीं बनाने की छवि यहाँ प्रस्तुत है। साथ ही आर्थिक विकास के प्रसार को भी यहाँ दर्ज किया गया है। चूँकि राहुल सांकृत्यायन अनेक बार नेपाल भी गये थे। और वहाँ की प्रकृति के साथ हुए दुर्व्यवहार को भी उन्होंने लिखा। जापान की प्रकृति में बांस और देवदार बहुलता में पाए जाते हैं उसे भी हिंदी पाठकों को बताया गया है।

संदर्भ ग्रन्थ-

[१] भारत-जापान सम्बन्धों का सूत्रपात और स्वामी विवेकानंद, स्वामी मेधासानंद ने अपने लेख का शीर्षक दिया है- "भारत-जापान सम्बन्धों का सूत्रपात और स्वामी विवेकानंद" इस लेख में उन्होंने यह तथ्य माना है। ऋतुपर्ण, सुरेश, संपादक, जापान के क्षितिज पर रचना का इन्द्रधनुष, गौरव प्रकाशन, प्रथम संस्करण २०१२, पृष्ठ संख्या ५३

[२] "मेरी हार्दिक इच्छा है कि हमारे देश की युवा पीढ़ी का प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में कम से कम एक बार जापान की यात्रा जरूर करे।" वही, पृष्ठ संख्या ५६,

[३] मिश्र, रामनारायण, जापान का संक्षिप्त इतिहास, काशी नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, संस्करण १८९८ ?

[४] वही, भूमिका

[५] ऋतुपर्ण, सुरेश, संपादक, जापान के क्षितिज पर रचना का इन्द्रधनुष, गौरव प्रकाशन, प्रथम संस्करण २०१२, पृष्ठ संख्या ७०

[६] पालीवाल, रीतारानी, अज्ञेय के सृजन में जापान, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण २००३, पृष्ठ संख्या ४१

[७] वही, पृष्ठ संख्या ४१

[८] वही, पृष्ठ संख्या ४१

[९] अज्ञेय की जापान में रहकर लिखी गईं ३७ कविताएँ निम्नलिखित हैं-- (बिकाऊ -तोक्यो, जापान, २४ अप्रैल १९५७, हे अमिताभ -क्योतो, जापान, ६ सितम्बर १९५७, धरा-व्योम -नारा, जापान, ६ सितम्बर १९५७, नदी तट -नारा, जापान, ६ सितम्बर १९५७, दीप पत्थर का- क्योतो, जापान,९ सितम्बर १९५७, एक चित्र -नारा-क्योतो, ९ सितम्बर १९५७, अंगूर-बेल -क्योतो, ९ सितम्बर १९५७, क्या हमीं रहे -क्योतो, १० सितम्बर १९५७, प्यार: अव्यक्त -क्योतो, १० सितम्बर १९५७, सोन-मछली -क्योतो, १० सितम्बर १९५७, खिड़की एकाएक खुली -क्योतो, ११ सितम्बर १९५७, प्यार: व्यक्त -क्योतो, १२ सितम्बर १९५७, मैं देख रहा हूँ -तोक्यो, १५ सितम्बर १९५७, साधना का सत्य -तोक्यो, १५ सितम्बर १९५७, वह क्या लक्ष्य -तोक्यो, १५ सितम्बर १९५७, 'द्वारहीन द्वार' -तोक्यो, १५ सितम्बर १९५७, घाट-घाट का पानी -तोक्यो, १६ सितम्बर १९५७, आँखें-१- तोक्यो, १६ सितम्बर १९५७, आँखें-२ -तोक्यो, १७ सितम्बर १९५७, घनी धुंध से छाया -तोक्यो, १७ सितम्बर १९५७, पूनो की साँझ -जापान, सितम्बर १९५७, रात में गाँव- तोक्यो, (जापान) १८ सितम्बर १९५७, पहाड़ी यात्रा -जापान, सितम्बर १९५७, सागर में ऊब-डूब- तोक्यो-कामाकुरा, २२ सितम्बर १९५७, सम्राज्ञी का नैवेद्य-दान -तोक्यो, २५ सितम्बर १९५७, दाता और भिखारी -तोक्यो, जापान, २७ सितम्बर १९५७, एक हवा-सी बार-बार -तोक्यो, २७ सितम्बर १९५७, चुप-चाप-चुज़ेनजी, -निक्को (जापान), शरत्पूर्णिमा, १० अक्टूबर १९५७, रात-भर आते रहे सपने -तोक्यो, १४ नवम्बर १९५७, रूप-केकी -क्योतो-ओसाका (रेल में), १६ दिसम्बर १९५७, रात और दिन -ओसाका, १८ दिसम्बर १९५७, औद्योगिक बस्ती -ओसाका-हिरोशिमा (रेल में), १७ दिसम्बर १९५७, लौटे यात्री का वक्तव्य -हिरोशिमा, १८ दिसम्बर १९५७, सान्ध्य तारा -जापान, २१ दिसम्बर १९५७, सागर पर भोर -अटाभी (जापान), २१ दिसम्बर १९५७, मैं ने कहा, पेड़...- तोक्यो, (जापान), २४ दिसम्बर १९५७, सागर पर साँझ-शिमिज़ू सागर तट (जापान), ५ जनवरी १९५८) अज्ञेय, सदानीरा, सम्पूर्ण कविताएँ, भाग २: कविताएँ १९५७-१९८०, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, प्रथम संस्करण १९८६, पृष्ठ संख्या १९-४२

[१०] अज्ञेय, सदानीरा, सम्पूर्ण कविताएँ, भाग-२: कविताएँ १९५७-१९८०, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, प्रथम संस्करण १९८६, पृष्ठ संख्या २८-२९

[११] पालीवाल, रीतारानी, अज्ञेय के सृजन में जापान, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण २००३, पृष्ठ संख्या ४१ --"असाध्य वीणा' नामक सुप्रसिद्ध लम्बी कविता के लिए भी अज्ञेय जापान के ऋणी हैं।"

[१२] अज्ञेय, अरी ओ करुणा प्रभामय, भारतीय ज्ञानपीठ, प्रथम संस्करण १९५९, पृष्ठ संख्या १०६

[१३] डबराल, मंगलेश, एक सड़क एक जगह, सेतु प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण २०२०, पृष्ठ संख्या ११२

[१४] "हाराकीरी देशभक्ति की सर्वोच्च अवस्था मानी जाती थी। इसे सेपुक्कू भी कहते हैं। ऐसे ही एक नामचीन मार्शल जनरल की कब्र का बयान यहाँ किया गया है।"..."पराजय और आत्मसमर्पण उनके शब्दकोश में नहीं थे। आत्म समर्पण उनकी परम्परा अपितु कानून के भी विरुद्ध था। सब कुछ नष्ट हो जाने के बावजूद वह निरंतर लड़ते रहना चाहते थे। यह पराजय उनके लिए इतनी अपमानजनक थी कि बहुत सारे सैनिक अधिकारियों ने पूरी जिन्दगी इस यातना को आत्मा पर फलते रहने के बजाय "सेपुक्कू" को अपनी मुक्ति का द्वार स्वीकार किया। यह मार्शल जनरल सुगियामा हाजिमे की कब्र है। १५ अगस्त १९४५ आत्मसमर्पण का दिन। ठीक उनकी बगल में उनकी पत्नी की कब्र है। अपनी पत्नी की हत्या गोली मार कर करने के बाद स्वयं आत्महत्या।"- अग्रवाल, अशोक, किसी वक्त किसी जगह, सारांश प्रकाशन, प्रथम संस्करण १९९८, पृष्ठ संख्या ११६

[१५] मिश्र, रामनारायण, जापान का संक्षिप्त इतिहास, काशी नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, संस्करण १८९८ ?

[१६] पुस्तकों के अतिरिक्त और कहीं से भी मुझे जापान का कुछ हाल मालूम नहीं हुआ। जापान की सभ्यता दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ रही है, वहाँ का सच्चा वृत्तान्त वही लिख सकता है जिसको उस देश में जाने का सौभाग्य प्राप्त हो।" वही, भूमिका

[१७] (१) सांकृत्यायन, राहुल, जापान, साहित्य-सेवक-संघ, छपरा, बिहार, प्रथम संस्करण १९३६; (२) शुक्ल, विष्णुदत्त, जापान की बातें, नवयुग प्रकाशन मंदिर, पटना, बिहार, प्रथम संस्करण १९३८; (३) कौसल्यायन, भदन्त आनंद, आज का जापान, श्रीअजन्ता प्रेस लिमिटेड, पटना, बिहार, प्रथम संस्करण १९५२?; (४) बजाज, रामकृष्ण, जापान की सैर, सत्साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण १९५७ ?; (५) शर्मा, हरिदत्त, सूर्योदय के देश में, सहयोग प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण १९६५; (६) शुक्ल, प्रमोदचन्द्र, गुड़ियों के देश में, शब्दकार प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण जनवरी १९७१; (७) सेठ, प्राणनाथ, चढ़ते सूरज का देश, राजपाल एंड सन्ज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण १९७६; (८) माकिनो, साइजी, जापानी आत्मा की खोज, प्रकाशक साइजी माकिनो, शान्तिनिकेतन, पश्चिम बंगाल, प्रथम संस्करण २०००; (९) द्विवेदी, रामप्रकाश, जापान जर्नल: जजीरे के जजमान, सेंटर फॉर कल्चर एंड ग्लोबल स्टडीज़, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण २०१८

[१८] (१) दास, गोविन्द, पृथ्वी परिक्रमा, आत्माराम एंड संस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण १९५४; (२) अग्रवाल, अशोक, किसी वक्त किसी वक्त, तामाबोचि, सारांश प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण १९९८; (३) कृष्णनाथ, पृथ्वी परिक्रमा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण २००९, (४) गर्ग, मृदुला, कुछ अटके कुछ भटके, पेंगुइन बुक्स इंडिया, यात्रा बुक्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण २००६; (५) कालिया, ममता, जापान का तोदायजी मन्दिर, नया ज्ञानोदय, जून २०१२; (६) दीक्षित, दामोदर दत्त, जापान, फिर अमेरिका, राही प्रकाशन, शाहजहाँपुर, उत्तरप्रदेश, प्रथम संस्करण २०१७; (७) जैन, इंदु, पत्रों की तरह चुप-जापान-प्रवास, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, उत्तरप्रदेश, प्रथम संस्करण २०२०; (८) डबराल, मंगलेश, एक सड़क एक जगह, हाइकू के इर्द-गिर्द, सेतु प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण २०२०

[१९] सांकृत्यायन, राहुल, जापान, साहित्य-सेवक-संघ, छपरा, बिहार, प्रथम संस्करण १९३६, पृष्ठ संख्या ५२

[२०] कौसल्यायन, भदन्त आनंद, आज का जापान, श्रीअजन्ता प्रेस लिमिटेड, पटना, प्रथम संस्करण १९५२?, पृष्ठ संख्या १८-१९

[२१] शुक्ल, प्रमोदचंद्र, गुड़ियों के देश में: जापान-यात्रा-संस्मरण, शब्दकार प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण १९७१, पृष्ठ संख्या १२

[२२] "कुछ स्टेशनों को पारकर हम ओसाका स्टेशन पर पहुँचे। गाड़ी खुली, चारों ओर हज़ारों कारखानों की चिमनियाँ धुँआ फेंक रही थीं। ओसाका जापान का लंकाशायर-मानचेस्टर है। सूती कपड़ों के लिए यह विशेष तौर से प्रसिद्ध है। दुनिया के बाज़ारों में ओसाका के कपड़ों ने तहलका मचा रक्खा है।" सांकृत्यायन, राहुल, जापान, साहित्य-सेवक-संघ, छपरा, बिहार, प्रथम संस्करण १९३६, पृष्ठ संख्या ६८

[२३] "जापानियों का एक विशेष गुण यह भी है कि वे अपनी उन्नति से अपना दिमाग खराब नहीं कर लेते। उनमें अपनी उन्नति को पचा लेने और आगे बढ़ते रहने की बान है। उनमें दूसरी यह प्रवृति है कि वे यह कोशिश करते हैं कि कोई भी चीज़ बेकार न जाये। वे कूड़े का भी प्रयोग करना जानते हैं।" शर्मा, हरिदत्त, सूर्योदय के देश में, सहयोग प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण १९६५, पृष्ठ संख्या १५३

[२४] "सरकार ने हाल में ही लगभग छः लाख मकान बनवाए हैं, लोग भी अपने-अपने मकान बनवा रहे हैं, फिर भी हमें और मकान चाहिए। मकानों की हमें वैसी ही सुविधा चाहिए, जैसी अमरीका में है।" वही, पृष्ठ संख्या १५८

[२५] "तोक्यो और ओसाका के बीच चलने वाली रेलों की गति संसार में सबसे तेज़ है और ये विज्ञान और इंजीनियरी के चरम विकास की प्रतीक मानी जाती हैं। इस दोहरी लाइन पर हर रोज़ ११२ सवारी गाड़ियाँ आती-जाती हैं। इनमें 'हिकारी' नाम की गाड़ी सबसे अधिक गति से चलती है। २१० किलोमीटर प्रति घंटा की गति से ५१५ किलोमीटर का रास्ता यह केवल तीन घंटे में तय करती है।" शुक्ल, प्रमोदचंद्र, गुड़ियों के देश में : जापान-यात्रा-संस्मरण, शब्दकार प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण १९७१, पृष्ठ संख्या ३९

[२६] "हवाई अड्डे से शहर की तरफ चले तो देखा कि टोकियो जगमगा रहा है। बाज़ार तो बंद था, लेकिन सड़कों पर चहल-पहल थी। हजारों टैक्सियाँ बहुत तेज़ी से दौड़ रही थीं।" शर्मा, हरिदत्त, सूर्योदय के देश में, सहयोग प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण १९६५, पृष्ठ संख्या २१

[२७] "तोक्यो में मुझे सबसे आकर्षक स्थान 'दिपातो' लगे। दिपातो अंग्रेजी शब्द 'डिपार्टमेंटल स्टोर' का संक्षिप्त जापानी रूपान्तर है। छः-सात या आठ मंजिल की बड़ी इमारत में दूकान, शो-रूम, संग्राहालय, प्रदर्शनी, मनोरंजन केंद्र और रेस्तराँ के सामूहिक स्वरूप को 'दिपातो' नाम दिया गया है। संसार में शायद ही कोई ऐसी चीज हो, जो दिपातो में न मिल सके। इसके साथ-ही स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध, देशी-विदेशी, सभी के खान-पान और मनोरंजन के साधन मिलते हैं। दिपातो में जापान के वाणिज्य का चरण विकास निहित है और वे जापान की समृद्धि के विस्तृत विज्ञापन हैं।" शुक्ल, प्रमोदचंद्र, गुड़ियों के देश में : जापान-यात्रा-संस्मरण, शब्दकार प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण १९७१, पृष्ठ संख्या २६

[२८] सांकृत्यायन, राहुल, जापान, साहित्य-सेवक-संघ, छपरा, बिहार, प्रथम संस्करण १९३६, पृष्ठ संख्या ६०

[२९] वही, पृष्ठ संख्या १७३-१८७

[३०] सिंह, काशीनाथ, सदी का सबसे बड़ा आदमी, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण १९८६, पृष्ठ संख्या १५६-५७

[३१] सांकृत्यायन, राहुल, जापान, साहित्य-सेवक-संघ, छपरा, बिहार, प्रथम संस्करण १९३६, पृष्ठ संख्या ५६-५७

[३२] वही, पृष्ठ संख्या ६१

[३३] "जापानी लोग प्राकृतिक दृश्यों के बड़े प्रेमी होते हैं। जापान में देश के भिन्न-भिन्न भागों में एक हजार तप्तकुंड फैले हुए हैं। हर साल दो करोड़ आदमी इन चश्मों को देखने और नहाने आते हाँ। बेप्पू के चश्मे सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं।" वही, पृष्ठ संख्या ६२

[३४] कृष्णनाथ, पृथ्वी परिक्रमा, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण २००९, पृष्ठ संख्या ११९

[३५] सांकृत्यायन, राहुल, जापान, साहित्य-सेवक-संघ, छपरा, बिहार, प्रथम संस्करण १९३६, पृष्ठ संख्या ७०

[३६] वही, पृष्ठ संख्या १३५

[३७] वही, पृष्ठ संख्या २१५

[३८] दीक्षित, दामोदर दत्त, जापान, फिर अमेरिका, राही प्रकाशन, शाहजहाँपुर, उत्तरप्रदेश, प्रथम संस्करण २०१७, पृष्ठ संख्या ५३

[३९] "डिपार्टमेंटल स्टोर का नया जापानी दोस्त मेरे दिमाग में यह बात अच्छी तरह उतार देना चाहता था कि गीशा का मतलब हल्के-फुल्के मनोरंजन से नहीं, गीशा सामान्य अभिनेत्री, सामान्य नर्तकी और संन्य मनोरंजनकर्त्री से बहुत अच्छी कला-साधिका है। वह कह देना चाहता था कि गीशा का मतलब एकदम कला-कन्या है। वह समझा रहा था कि वैसे तो जापान ही एक कलामय देश है, कला ही यहाँ का जीवन है, परन्तु गीशा जापानी कला की पराकाष्ठा का नाम है।" शर्मा, हरिदत्त, सूर्योदय के देश में, सहयोग प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण १९६५, पृष्ठ संख्या ४३

[४०] सेठ, प्राणनाथ, चढ़ते सूरज का देश, राजपाल एण्ड सन्ज़, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण १९७६, पृष्ठ संख्या १००

[४१] सांकृत्यायन, राहुल, जापान, साहित्य-सेवक-संघ, छपरा, बिहार, प्रथम संस्करण १९३६, पृष्ठ संख्या ८१

[४२] "टोकियो का जीवन जापान देश का जीवन का प्रतिनिधित्व करता है। यहाँ सड़कों पर नर-नारियों का सदा प्रवाह-सा बहता रहता है। उनके नखशिख तथा वेशभूषा से जापान की जनता के स्वरूप एवं उनके व्यवहार से इस जनता की विनम्रता का ज्ञान हो जाता है। साथ ही टोकियो की गंदगी से इस बात का भी पता चल जाता है कि जापान के निवासियों का रहन-सहन बहुत स्वच्छ नहीं है। सभी जगह तेल में पकती हुई मछली की दुर्गन्ध आती रहती है।" दास, गोविन्द, पृथ्वी परिक्रमा, आत्माराम एण्ड संस, प्रथम संस्करण १९५४, पृष्ठ संख्या २४२

[४३] सांकृत्यायन, राहुल, जापान, साहित्य-सेवक-संघ, छपरा, बिहार, प्रथम संस्करण १९३६, पृष्ठ संख्या २३५

[४४] "ओसाका जापान का सबसे बड़ा व्यापार-केंद्र है। नगर प्रायः टोकियो के सदृश वही का-सा जीवन। ओसाका जापान का दूसरे नम्बर का नगर है।...बहतु अधिक नहरें और पुल होने के कारण ओसाका को जापान का वेनिस कहते हैं।" दास, गोविन्द, पृथ्वी परिक्रमा, आत्माराम एण्ड संस, प्रथम संस्करण १९५४, पृष्ठ संख्या २४५

[४५] सांकृत्यायन, राहुल, जापान, साहित्य-सेवक-संघ, छपरा, बिहार, प्रथम संस्करण १९३६, पृष्ठ संख्या १३२

[४६] कालिया, ममता, जापान का तोदायजी मन्दिर, नया ज्ञानोदय, जून २०१२

[४७] शुक्ल, प्रमोदचंद्र, गुड़ियों के देश में : जापान-यात्रा-संस्मरण, शब्दकार प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1971, पृष्ठ संख्या १६-१७

[४८] वही, पृष्ठ संख्या १९

[४९] वही, पृष्ठ संख्या १९

[५०] वही, पृष्ठ संख्या २०

[५१] ऋतुपर्ण, सुरेश, संपादक, जापान के क्षितिज पर रचना का इन्द्रधनुष, गौरव प्रकाशन, प्रथम संस्करण २०१२, पृष्ठ संख्या ७०

[५२] सांकृत्यायन, राहुल, जापान, साहित्य-सेवक-संघ, छपरा, बिहार, प्रथम संस्करण १९३६, पृष्ठ संख्या ४९

[५३] "भारत में रहते, जापान के संदर्भ में, इकेबाना फूलसज्जा और बोंजाई पौधों का जिक्र बराबर सुनती रही थी। जापान आने पर देखा, यहाँ तो पूरे-के-पूरे उद्यान बोंजाई हैं, जेन बाग़ के नाम से मशहूर। और पूरा-का-पूरा, ताज़ा-खिला गुलदाउदी का पौधा इकेबाना शैली का नमूना है।" गर्ग, मृदुला, कुछ अटके, कुछ भटके, यात्रा बुक्स, प्रथम संस्करण २००६, पृष्ठ संख्या ५३

[५४] माकिनो, साइजी, जापानी आत्मा की खोज, लेखक व प्रकाशक श्री साइजी माकिनो, शान्तिनिकेतन, प्रथम संस्करण सन् २०००, पृष्ठ संख्या ३१-३२

[५५] सांकृत्यायन, राहुल, जापान, साहित्य-सेवक-संघ, छपरा, बिहार, प्रथम संस्करण १९३६, पृष्ठ संख्या २१०

[५६] ऋतुपर्ण, सुरेश, संपादक, जापान के क्षितिज पर रचना का इन्द्रधनुष, गौरव प्रकाशन, प्रथम संस्करण २०१२, पृष्ठ संख्या ७०

[५७] सांकृत्यायन, राहुल, जापान, साहित्य-सेवक-संघ, छपरा, बिहार, प्रथम संस्करण १९३६, पृष्ठ संख्या ६८

[५८] वही, पृष्ठ संख्या ६८-६९

[५९] शुक्ल, प्रमोदचंद्र, गुड़ियों के देश में : जापान-यात्रा-संस्मरण, शब्दकार प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1971, पृष्ठ संख्या ३७

[६०] वही, पृष्ठ संख्या २५

[६१] सांकृत्यायन, राहुल, जापान, साहित्य-सेवक-संघ, छपरा, बिहार, प्रथम संस्करण १९३६, पृष्ठ संख्या ६५

[६२] "हजारों नर-नारी देश और विदेश से नित्य ही फुजीयामा की अकथनीय शोभा देखने आते हैं। इसलिए फुजीयामा किमोनो के समान जापान के राष्ट्रीय प्रतीक के रूप में संसार में विख्यात है।" शुक्ल, प्रमोदचंद्र, गुड़ियों के देश में : जापान-यात्रा-संस्मरण, शब्दकार प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण १९७१, पृष्ठ संख्या ४०

[६३] वही, पृष्ठ संख्या २५१